पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, अमृतचन्द्राचार्य कृत, १२ वीं गाथा। ११ गाथा पूरी हुई। **आगे पुरुषार्थसिद्धि का उपाय कहना चाहते हैं, वहाँ प्रथम ही परद्रव्य के सम्बन्ध का कारण कहते हैं।** जीव को परद्रव्य का सम्बन्ध क्यों है, वह कारण कहते हैं। **जिसके जानने पर क्या उपाय करना होता है, वह कहते हैं–** तीन बोल कहते हैं। एक तो पुरुषार्थसिद्धि-उपाय कहना चाहते हैं; परद्रव्य के सम्बन्ध का कारण कहते हैं; वह **जिसके जानने पर क्या उपाय करना होता है, वह कहते हैं–**

जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गलाः कर्मभावेन।।१२।।

अन्वयार्थ : जीव के किये हुए रागादि परिणामों का... देखो! यहाँ 'जीव के किये हुए' — (ऐसा कहकर) यहाँ से शुरु किया है। आगे कहेंगे, कर्म के किये हुए राग को अपना माने तो मिथ्यात्व है—ऐसा कहेंगे। समझ में आया? १४ वीं गाथा में ऐसा कहेंगे—कर्मकृत भाव। यहाँ कहते हैं जीवकृत। यहाँ तो जीव स्वयं ही विकार परिणाम को करता है, इससे यहाँ शुरु करते हैं; और फिर तो ऐसा कहेंगे, वह विकार परिणाम, निमित्त के आधीन हुई उपाधि है; इसलिए चौदह (गाथा) में कहेंगे—कर्म के किये हुए विकारी भाव को अपना माने तो वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? क्या कहा? कर्मकृत। १२ वीं गाथा में जीवकृत और १४ वीं गाथा में कर्मकृत (कहा है)। दोनों मूल पाठ है।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : अनेकान्त है।

उत्तर : अनेकान्त अर्थात्? यहाँ तो दूसरा कहना है कि विकारीभाव तेरे किये, परिणमे तो तू परिणमे तो होते हैं—ऐसा कहते हैं, परन्तु १४ वीं (गाथा) में ऐसा कहेंगे कि भाई! विकारी परिणाम कोई इसका मूलस्वरूप नहीं है। वे विकारी परिणाम, निमित्त के आधीन (होकर हुए) उपाधि कृत्रिम क्षणिक है। ऐसे आत्मा त्रिकाल शुद्धस्वभाव में उन्हें अपना माने तो उसका नाम ही विपरीत-अभिनिवेश मिथ्यात्व कहा जाता है। समझ में आया?

यह पहली बात सिद्ध करने के पश्चात् वहाँ कहेंगे। उपाधिभाव है, वह वास्तविक चैतन्य का स्वभाव नहीं। ज्ञानानन्द चैतन्य वीतरागी समरसीस्वरूप; उसका यह विकारीभाव—पुण्य-पाप, मिथ्यात्व, राग-द्वेष—यह कहीं उसका स्वभाव नहीं है। इसका स्वभाव नहीं है, इसलिए इसे स्वभाव की दृष्टि करके, उन्हें, इससे रहित मनवाना है; इसलिए उन्हें वहाँ कर्मकृत विकार कहा जाएगा। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **जीव के किये हुए रागादि परिणामों का...** जीव के **कृतं** है न? जीव के किये हुए पुण्य और पाप, काम और क्रोध, मिथ्यात्व आदि भाव। ऐसे **परिणामों का निमित्तमात्र...** ऐसे परिणाम को **निमित्तमात्र पाकर फिर जीव से...** अर्थात् पूर्व के बँधे हुए। यह तो नये बँधते हैं, उसके लिये। **फिर जीव से भिन्न अन्य पुद्गल स्कन्ध, आत्मा में अपने आप ही...** कर्म के स्कन्ध अपने आप ही ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमते हैं। अपने आप। ज्ञानावरणादिरूप से आत्मा में अर्थात् साथ में, सम्बन्धरूप से। आत्मा में अर्थात् साथ में, सम्बन्धरूप से। यहाँ तो सम्बन्ध बतलाना है न? **प्रथम ही परद्रव्य के सम्बन्ध का कारण...** (ऐसा कहकर) सम्बन्ध बताते हैं। ऊपर ऐसा कहा था न? आत्मा में आत्मा स्वयं अपने स्वभाव की शुद्धता को भूलकर, राग और द्वेष को करता है। उस राग-द्वेष का निमित्त... समय तो वही है और उस क्षण कर्म पुद्गल अपने आप कर्मरूप परिणमते हैं। समय का भेद नहीं है कि यह निमित्त है, इसलिए वहाँ हुआ। काल भेद नहीं है। समझ में आया?

जीव ने राग-द्वेष किये, वह समय ही कर्म होने का है। यहाँ, निमित्त पाकर

www.vitragvani.com

अर्थात् वहाँ निमित्त है और कर्म पुद्गल अर्थात् कर्म की वर्गणा है, वह कर्मरूप परिणमे, स्वयंमेव परिणमे। देखो! अपने आप ही परिणमती है। राग-द्वेष हैं, वे उसे परिणमते हैं, राग-द्वेष हैं, वे कर्म की पर्याय को परिणमाते हैं—ऐसा नहीं है। समझ में आया? आगे, परिणमाते हैं—ऐसा आयेगा, हों! अभी वापस आगे गाथा में अभी। शक्ति से आगे आयेगा। दूसरी बात करेंगे।

टीका : 'जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनः अन्ये पुद्गलः स्वयमेव कर्मभावेन परिणमन्ते' – जीव के किये हुए रागादि परिणाम.... जीव के किये हुए जो राग और द्वेष, पुण्य और पाप; शुभ और अशुभभाव। इसमें मिथ्यात्व भी साथ में आ जाता है। **निमित्तमात्र पाकर...** निमित्त अर्थात् उस काल में वहाँ राग-द्वेष हैं-इतना। उसी काल में, **नवीन अन्य पुद्गल स्कन्ध स्वयमेव ज्ञानावरणादि कर्मरूप होकर परिणमन करते हैं।** समझ में आया? उन्हें, यह आत्मा के राग-द्वेष के कर्मरूप से परिणमित नहीं कराते। समझ में आया?

भावार्थ : जब जीव राग-द्वेष-मोहभाव से परिणमन करता है... अब, मोह-मिथ्यात्व डाला है। जब जीव अपने स्वरूप को भूलकर, पर में सुख-दुःख है, पर के कारण—ऐसा मिथ्यात्वभाव अथवा पुण्य-पाप का भाव मेरा—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष का भाव, इस भाव से जब आत्मा पर्यायरूप से (परिणमता है); भाव अर्थात् पर्याय। उस पर्यायरूप से जब जीव होता है, **परिणमन करता है, तब उन भावों का निमित्त पाकर...** 'निमित्त पाकर' का अर्थ कि उस काल में वहाँ एक राग-द्वेष है, इतना। **स्वयं ही पुद्गल...** नये परमाणु स्वयं ही **द्रव्यकर्म अवस्था को धारण करता है। पुद्गलद्रव्य कर्म अवस्था को धारण करता है।** जीव के मिथ्यात्व और राग-द्वेष परिणाम निमित्तमात्र हैं। वहाँ आगे कर्म-स्वयं द्रव्यकर्म—पुद्गलद्रव्य कर्म अवस्था को स्वयं ही धारण करता है। यहाँ राग-द्वेष किये, इसलिए वहाँ धारण होता है—ऐसा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

उत्तर : समय एक है। प्रश्न क्या? यह हुए, इसलिए होवे तो दूसरा समय चाहिए।

www.vitragvani.com

यहाँ होते हैं (और) वहाँ होता है, बस! यहाँ राग-द्वेष, मोहरूप से जीव में भाव हुए, उस काल में कर्मद्रव्य (पुद्गलद्रव्य) कर्म-अवस्था को धारण करता है। उसी काल में धारण करता है। उसमें कहीं यह हुआ, इसलिए ऐसा हुआ-ऐसे नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यहाँ पदार्थ में हुआ, इसलिए उसमें हुआ, ऐसा?

उत्तर : परन्तु ऐसा कहाँ था? उस काल में इसके कारण (हुआ होवे) तो उस काल में तो इसे पता भी नहीं। वह तो फिर जड़ को प्रश्न करेगा। समझ में आया? ऐसा ही कोई निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। यहाँ विकारी परिणाम हों, और वहाँ आगे कितने ही रजकणों में उस प्रकार की अवस्था होने के योग्य हों, वे अपने स्वकाल में, अपने कारण से स्वयं उसरूप कर्म अवस्था धारण करते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

विशेष इतना है कि यदि आत्मा देव-गुरु-धर्मादिक प्रशस्तरागरूप परिणमन करे... पहली सामान्य व्याख्या की थी। यदि आत्मा, देव-गुरु-धर्मादि के शुभरागरूप हो, **तो शुभकर्म का बन्ध होता है।** यहाँ शुभराग होवे तो वहाँ शुभकर्म का बन्धन होता है। वह स्वयमेव (होता है)। कर्म स्वयमेव शुभकर्मरूप अपने आप वहाँ होते हैं—कर्म-अवस्था धारण करते हैं। कहो, समझ में आया? यह आत्मा, राग-द्वेष करता है; इसलिए कर्म की अवस्था को होना पड़ता है—ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? इसलिए निमित्तमात्र उस समय और उसी समय में पुद्गलद्रव्य कर्म की अवस्थारूप परिणमता है, अवस्था को धारण करता है, अवस्थारूप होता है। ऐसा निमित्त-निमित्त सम्बन्ध एक समय में, एकसाथ स्वयं से,-अपने से होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

प्रश्न :- जीव के भाव अति सूक्ष्मरूप हैं.... महाराज! यह क्या हुआ? पुद्गल को पता कैसे पड़ा कि मुझे ऐसा परिणमित होना? समझ में आया? क्योंकि जीव के भाव तो महासूक्ष्म-एकदम अरूपी हैं। राग-द्वेष-मिथ्यात्वभाव, जीव ने अपने स्वरूप को भूलकर किया, वे तो महासूक्ष्म हैं। जो यहाँ महासूक्ष्म कहा। (उन्हें ही) समयसार में पुण्य-पाप के स्थूल परिणाम कहे। अपेक्षा समझनी चाहिए या नहीं? शुभभाव को भी, समयसार में, स्थूल शुभ परिणाम, स्थूल शुभ, संक्लेश-अशुभ संक्लेश-ऐसा कहा। दोनों को स्थूल कहा, पुण्य-पाप अधिकार। समझ में आया?

www.vitragvani.com

यहाँ तो उन परमाणुओं की अपेक्षा से महासूक्ष्मपना कहना है। वहाँ आगे सूक्ष्म शुद्धस्वभाव की अपेक्षा से शुभ-अशुभ को स्थूल कहा गया था। क्या कहा? चैतन्य सूक्ष्म शुद्धस्वभाव की अपेक्षा से शुभ-अशुभपरिणाम को स्थूल परिणाम, सूक्ष्म स्वभाव की अपेक्षा से कहा गया था। यहाँ कर्म की अपेक्षा से आत्मा के मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम महासूक्ष्म कहे गये हैं। कहो, समझ में आया? कितनी अपेक्षायें होती हैं! एक ओर महासूक्ष्म (कहे), एक ओर महास्थूल (कहे)। शुभ-अशुभपरिणाम महास्थूल, स्थूल (कहे)। यह के यही अमृतचन्द्राचार्य कहनेवाले। यह भी अमृतचन्द्राचार्य कृत। समझ में आया?

आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप ज्ञान और वीतराग समरसीस्वरूप, वह सूक्ष्म है, सूक्ष्म है और कर्म-रूपी मूर्त के निमित्त के लक्ष्य से शुभ-अशुभभाव हुए; वे ऐसे सूक्ष्म स्वभाव, वीतरागी स्वभाव की अपेक्षा से उन राग-द्वेष स्वभाव (भाव) को स्थूल कहा गया है। समझ में आया? उन्हें ही यहाँ कर्म की अपेक्षा से सूक्ष्म कहा गया है। स्वभाव की अपेक्षा से शुभ-अशुभ को स्थूल कहा, उन्हीं-उन्हीं को यहाँ कर्म की अपेक्षा से सूक्ष्म कहा। समझ में आया?

जीव के भाव अति सूक्ष्मरूप हैं.... यह कौन से भाव? अभी विकारीभाव की बात है। यहाँ अभी वीतरागी स्वभाव की बात नहीं है। यहाँ तो (कर्म को) निमित्त होवे, ऐसे भाव लेना है न? जीव स्वयं तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति द्रव्यस्वभाव, अकेला ज्ञायकस्वभाव, समरसी वीतरागस्वभाव है, वह तो महासूक्ष्म है, परन्तु उसकी वर्तमान दशा में शुभ-अशुभ, मिथ्यात्वभाव या पुण्य के भाव या पाप के दूसरे अशुभराग, वे सब परिणाम, कर्म जड़ की रूपी मूर्त की अपेक्षा से इन्हें महासूक्ष्म कहा गया है। समझ में आया? इन भावों को मूर्त कहे, कहीं मूर्त कहे, राग-द्वेष को रूपी कहे, अजीव कहे, जड़ कहे, पुद्गलपरिणाम कहे। ऐई! समयसार में ऐसे बोल आते हैं; द्रव्यस्वभाव को बताना हो तब।

यहाँ तो इसकी पर्याय में स्वयं से होते हैं और कर्म के जड़ रजकण उस काल में कर्म-अवस्था धारण करे, उनसे ये परिणाम महासूक्ष्म भिन्न हैं। उस कर्म को कैसे पता पड़ा—ऐसा कहना है; कि मुझे ऐसा परिणमना? इसने एक दयाभाव किया; दया का भाव

www.vitragvani.com

शुभ है, वह तो सूक्ष्म है। उसे (कर्म को) कैसे पता पड़ा कि मुझे सातारूप परिणमना? जितने प्रमाण में इसका दया का भाव हो, उतने प्रमाण में वहाँ साता के रजकण, सातारूप होते हैं। मिथ्यात्व होवे तो दर्शनमोह की जड़ की पर्याय वहाँ उस प्रमाण होती है। पाप आदि के परिणाम में असंख्य भेद में जो भेद हो, उतने प्रमाण में वहाँ कर्म की पर्याय असाता आदिरूप होती है—तो उसे कैसे पता पड़ा कि इसे ऐसे परिणाम हैं, इसलिए मुझे ऐसा होना?—ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया?

जीव के भाव अति सूक्ष्मरूप हैं, उनका ज्ञान जड़कर्म को कैसे होता है? और ज्ञान हुए बिना पुण्य-पापरूप होकर कैसे परिणमन कर जाते हैं? यह प्रश्न, 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में 'टोडरमलजी' ने लिया है। वे स्वयं यहाँ डालते हैं, स्वयं ने वहाँ लिया है। उसे कैसे पता पड़े? पता पड़ने का क्या काम है वहाँ? ज्ञान होवे तो पता पड़े—इसका कुछ काम है यहाँ? ऐसा ही कोई सम्बन्ध सहज होता है। समझ में आया? सूर्य का निमित्त पाकर कमल खिलते हैं, सूर्य का निमित्त पाकर चकवा बोलता है। सूर्य हस्त होवे तो अपने आप चकवा-चकवी बोलते बन्द हो जाते हैं। उन्हें कोई जानने के साथ सम्बन्ध नहीं है।

और ज्ञान हुए बिना किस प्रकार... जड़ को किस प्रकार पता पड़े? एक बोल। इस आत्मा ने भाव ऐसे किये—ऐसा कर्म को कैसे खबर पड़े? एक बात। और खबर बिना... क्योंकि वे जड़ हैं। **और ज्ञान हुए बिना पुण्य-पापरूप होकर कैसे परिणमन कर जाते हैं?**

उत्तर :- जिस प्रकार मन्त्रसाधक पुरुष बैठा-बैठा गुप्तरूप से मन्त्र जपता है... अकेला कहीं गुफा में बैठा होवे और मन्त्र जपता है। **और उसके किये बिना ही उस मन्त्र के....** वहाँ समयसार में न्याय यह है। अमृतचन्द्राचार्य में यह है। यह शब्द है **किये बिना....**

मुमुक्षु : निमित्त से कहना पड़ा।

उत्तर : निमित्त अर्थात्? चीज़ है। कहना पड़ा क्या?

मन्त्र के निमित्त के काल में। लो! निमित्त अर्थात् मन्त्र के निमित्त के काल में, इसके—मन्त्र के **किये बिना ही, उस मन्त्र के निमित्त से किसी को पीड़ा उत्पन्न होती है,....** उसे वहाँ पीड़ा उत्पन्न होने का काल है, उसके कारण (होती है और) इस मन्त्र

www.vitragvani.com

का तो निमित्तमात्र है; मन्त्र ने वहाँ किया नहीं है, बस! उस मन्त्र से इसमें कुछ हुआ नहीं है। हुआ होवे तो, उसके कारण होवे तब तो वह उपादान हो जाए। उस मन्त्र का स्वयं साधक है, उसका ध्येय वह है; वह वहाँ अपने आप उस काल में अन्य को पीड़ा होती है, सिर फूटता है, डण्डा पड़े... समझ में आया? अभी एक, दूसरा बोल आयेगा, फिर चार बोल आयेंगे।

किसी को पीड़ा उत्पन्न होती है,.... पहली तो बात ली। मन्त्र-साधक को किसी को दुःख देने का भाव होवे तो वहाँ दुःख देने की पर्याय स्वयं उसके कारण होती है। मन्त्र-साधक की पर्याय के किये बिना वहाँ होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : मन्त्र-साधक न होता तो...

उत्तर : परन्तु न हो, यह प्रश्न कहाँ है यहाँ? है, और यह जीव न होता तो तर्क ही ऐसा कहाँ होता कि मैं हूँ या नहीं? मन्त्र (साधक) कहीं बैठा हो और यहाँ अपने आप पीड़ा होती है। ऐसे ही कोई निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध जगत में अनन्त बन रहे हैं। कहो, समझ में आया?

यहाँ सिर ऐसे-ऐसे चले तो वहाँ दीवार में धूप हो, वहाँ भी ऐसे-ऐसे होता है। उसे खबर पड़ती है वहाँ? रात्रि में दीपक होता है न ऊपर? यह दीवार ऊपर है, यहाँ सिर ऐसे-ऐसे हिले तो वहाँ भी ऐसे-ऐसे होता है। वहाँ उसे खबर है? ऐसा ही कोई निमित्त इसका और उस काल में उस काली पर्याय का सफेद में से परिणमने का काल है, इसलिए उसके काल में होती है।

प्रश्न : यहाँ सिर बन्द रखे तो वहाँ बन्द होता है।

उत्तर : इसके लिये तो यह दृष्टान्त दिया। ये नीम के पत्ते लो न! नीचे भी छाया ऐसे-ऐसे होती है। उसे पता है कि यहाँ होता है, इसलिए होऊँ? परन्तु ऐसा ही कोई सम्बन्ध है। वहाँ उस प्रकार ऐसे-ऐसे चले, वहाँ काले परमाणु की पर्याय, यहाँ जो सफेद होवे, वह कालेरूप उसके कारण से परिणमते हैं। इसका निमित्त, उसके कारण से; इसके किये बिना। नीम के पत्ते ऐसे-ऐसे हों, (तब) नीचे काली झांई ऐसे-ऐसे पड़ती है न? वह इसके किये बिना वहाँ होती है। पत्तों की पर्याय के किये बिना वहाँ काली पर्याय होती है।

www.vitragvani.com

प्रश्न : इसके निमित्त से होती है।

उत्तर : परन्तु निमित्त से होती है-इसका अर्थ क्या हुआ ? निमित्त है—ऐसा अर्थ हुआ। निमित्त से होती है—अर्थात् ? समझ में आया ? यह तो हजारों-लाखों दृष्टान्त बन रहे हैं। देखो न ! तेजी से गाय चलती हो, तेजी से छाया ऐसे-ऐसे चलती जाती है। छाया नहीं, वह चली नहीं जाती। वे वहाँ-वहाँ के परमाणु नये... नये... नये... नये... काली-काली पर्यायरूप परिणमते हैं। यह तो निमित्तमात्र है। ऐसे गाय चलती हो, सूर्य ऐसे हो तो ऐसे छाया पड़ती है या नहीं ? यह गाय का निमित्त है। यहाँ काले परमाणु की, सफेद की अवस्था कालेरूप परिणमने का उनका काल है, उसमें वह (गाय) निमित्त कहलाती है।

मुमुक्षु : इसमें काल नहीं लिखा।

उत्तर : काल नहीं, लो ! ऐई ! काल नहीं, कहते हैं। लो !

मुमुक्षु : लिखा नहीं।

उत्तर : परन्तु लिखा नहीं, आया या नहीं ? यह निमित्त पाकर अर्थात् उस समय का काल, ऐसा। उस समय वहाँ परमाणु परिणमते हैं। हो गया, काल तो एक ही है। एक तो काल ही होता है न किन्तु सबके लिये। समझ में आया ?

किये बिना ही उस मन्त्र के निमित्त से किसी को पीड़ा उत्पन्न होती है, किसी का मरण होता है,.... उसकी आयुष्य स्थिति पूरी होने की होवे तो मन्त्र का निमित्त है। वहाँ तो उसकी आयुष्य पूर्ण होनी ही हो, हों ! इसके (मन्त्र के) कारण मरण होता है—ऐसा नहीं। **किये बिना किसी का मरण होता है, किसी का भला होता है,...** लो ! यहाँ मन्त्र साधे और किसी को पुण्य का उदय होवे तो वहाँ पैसा आदि आवे, शरीर में रोग मिट जाये, निरोगता हो। वहाँ उसे होना होवे तो, हों ! तब उसको निमित्त कहा जाता है। **कोई विडम्बनारूप परिणमन करता है....** लो ! मन्त्र साधने पर कोई घूमने लगता है, ऐसे-ऐसे करने लगता है, वह तो उसकी अपनी पर्याय है। इसे-घूमनेवाले को पता भी नहीं कि वहाँ कोई निमित्त है। खबर है ? खबर बिना ही ऐसा ही कोई सम्बन्ध (होता है)। ऐसे अनन्त सम्बन्ध समय-समय में बन रहे हैं।

ऐसी उस मन्त्र में शक्ति है। यहाँ वजन आया अब तुम्हारा। ऐसी अर्थात् ? सामने

www.vitragvani.com

वहाँ हो और यहाँ निमित्त है; उस निमित्त में उस प्रकार की शक्ति है, निमित्तपने की ऐसी शक्ति है। कहो, समझ में आया? वह ही वहाँ निमित्तरूप से हो—ऐसी वहाँ शक्ति है; निमित्त की शक्ति। वहाँ तो उसके कारण से होता है। समझ में आया? परन्तु इसमें ऐसा लेते हैं कि देखो! मन्त्र में ऐसी शक्ति है कि सामने होता है। यह तो कर्ता-कर्म हो गया। ऐसा कर्ता-कर्म होता नहीं। कर्ता हो गया और वहाँ कार्य हो गया—ऐसा है नहीं। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध भिन्न है; कर्ता-कर्म भिन्न है। कर्ता-कर्म, व्याप्य-व्यापक में हो सकता है; निमित्त-निमित्त, व्यापक-व्यापक न हो, वहाँ भिन्न में हो सकता है। निमित्त-निमित्त पर में हो सकता है। समझ में आया?

उसका निमित्त पाकर चेतन-अचेतन पदार्थ स्वयं ही अनेक अवस्थायें धारण करते हैं। लो! वह स्वयं ही। मन्त्र की शक्ति, शक्ति में उसके पास रही। **उसका निमित्त पाकर....** देखो! उसका निमित्त पाकर अर्थात् उसी काल में, ऐसा। **चेतन-अचेतन पदार्थ स्वयं ही अनेक अवस्थायें....** स्वयं से **धारण करते हैं।** कहो, समझ में आया? यह दृष्टान्त (दिया)। दृष्टान्त में भी अभी कठिन (पड़ता है)। लोगों को इसमें (विवाद)। यह दृष्टान्त अभी पत्र में लेख में दिया है। ऐई! यह देखो! टोडरमलजी ने मन्त्र लिखा है। मोहनधूल से, वहाँ.... ऐसा लिखा है। इस मन्त्र शक्ति से वहाँ विडम्बना को प्राप्त होता है—ऐसा लिखा है। यह तो कर्ता-कर्म हो गया, यह तो कर्ता-कर्म हुआ। इससे वहाँ होवे तो कर्ता-कर्म (हुआ), परन्तु यह है और वहाँ होता है, उस समय में निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। समझ में आया? बड़ा घोटाला निमित्त-निमित्त का और कर्ता-कर्म का।

उसी प्रकार.... इस दृष्टान्त का अब सिद्धान्त आत्मा में उतारते हैं। **अज्ञानी जीव....** देखो! अज्ञानी जीव की यहाँ बात है। राग-द्वेष होना, यह कहीं ज्ञानी की बात यहाँ है नहीं। **अपने अन्तरंग में विभावभावरूप परिणमन करता है।** अज्ञानी जीव अपनी अन्तरंग पर्याय में विभाव अर्थात् विकाररूप से; विभावभाव अर्थात् विकार पर्यायरूप से होता है। **उन भावों का निमित्त पाकर....** वह विकार परिणाम वहाँ आगे निमित्त है। किसे? **इसके बिना किये ही....** जीव के राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव के किये बिना **कोई पुद्गल पुण्य-प्रकृतिरूप परिणमन करते हैं,....** देखो! सब पुद्गल-ऐसा नहीं।

www.vitragvani.com

समझ में आया ? कोई पुद्गल-पुण्य प्रकृतिरूप से-सातारूप से, उच्च गोत्ररूप से, शुभ अर्थात् गोत्ररूप से, शुभ आयुरूप से। समझे न ?

मुमुक्षु : शुभभाव होवे तो न!

उत्तर : शुभभाव तो निमित्तमात्र है। होवे तो न—ऐसा फिर कहाँ आया ? वहाँ आगे इसे खबर नहीं होती और इसके किये बिना वहाँ साता के रजकण सातारूप परिणमते हैं। यह उसकी स्वयं की पर्याय का स्वकाल है, इसलिए परिणमते हैं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसकी उत्पाद की स्वतन्त्र पर्याय है—ऐसा कहते हैं। उस समय वह ही पर्याय कर्म की अवस्था में होने में, उस द्रव्य में वह अवस्था होने का उसका काल है। यह तो निमित्तमात्र है।

कोई पाप-प्रकृतिरूप परिणमन करते हैं,... दो भाग पाड़े न ? इसने तो पुण्य-पाप के भाव किये। शुभभाव होवे तो वहाँ साता, उच्चगोत्र आदिरूप पुद्गलद्रव्य कर्म अवस्था धारण करे और इसके पाप के परिणाम होवे तो दर्शनमोह आदि, असातावेदनीय आदि, नीचगोत्र आदि कर्म की पर्याय-अवस्था होवे। बस! इसके किये बिना। जीव के राग-द्वेष के किये बिना वे पुद्गल उस समय, उस काल में अपनी पर्याय को धारण करते हैं, उसे यहाँ निमित्त कहने में आता है। तब पहले को—जीव के भाव को निमित्त कहा जाता है। समझ में आया ?

ऐसी इसके भावों में शक्ति है। देखो! पहले में मन्त्र शक्ति आया था न ? ऐसी इसके विकारभावों में निमित्तपने की शक्ति है। **ऐसी इसके भावों में....** इसके अर्थात् विकारीभाव में निमित्तपने की शक्ति है। जैसे मन्त्र की, मन्त्र में शक्ति है, वैसे इसके विभाव / विकार परिणाम में ऐसी शक्ति है। **उनका निमित्त पाकर....** निमित्त पाकर का अर्थ हुआ कि यह हुए, इसलिए अब दूसरा दूसरे समय परिणमे-ऐसा नहीं है, वह तो उस समय में होता है। **पुद्गल स्वयं ही....** पुद्गल स्वयं ही, स्वयं। इसका विवाद था... परिणमे स्वयं, परन्तु स्वयंमेव परिणमे नहीं, उसके कारण परिणमे, अन्य के कारण परिणमे। आहाहा! अरे... ! भगवान! क्या करना है तुझे ?

स्वयं ही अनेक अवस्थायें धारण करता है,.... कर्म ही स्वयं अनेक अवस्था

www.vitragvani.com

(धारण करता है)। **ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।** ऐसा ही कोई निमित्त और यहाँ नैमित्तिक (सम्बन्ध है)। सामने पर्याय हो, उसे नैमित्तिक कहते हैं, यहाँ जो निमित्त है, उसे-संयोगी को निमित्त कहते हैं। ऐसा ही कोई सम्बन्ध अनादि-अनन्त ऐसा बहुत बन रहा है। कहो, समझ में आया इसमें? माँगीरामजी! देखो! जीव ने राग-द्वेष किये तो वहाँ कर्म को होना पड़ा या नहीं? नहीं तो कर्म, कर्मरूप होता? बोलो जवाब?

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

उत्तर : परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध क्या? यहाँ राग-द्वेष किये तो कर्म को कर्मरूप होना पड़ा न? राग-द्वेष न करता तो होता? इतनी तो कर्म की पर्याय, राग-द्वेष के आधीन / पराधीन हुई या नहीं? वह तो उसके कारण हुई है, इसके कारण नहीं। राग-द्वेष, उस समय कर्मद्रव्य में कर्म-अवस्था होनी थी, इसके कारण से हुई-ऐसा नहीं। यह तो निमित्त है। इसके कारण हुई हो, तब तो यह कर्ता हो गया और वह (कर्म होना) कार्य हो गया। भारी घोटाला बड़ा है। दबा दे ऐसा है एक बार तो, ऐई! माँगीरामजी! राग-द्वेष न करे तो कर्म होते थे? क्या है? राग-द्वेष किये तो कर्म हुए, इतना इसका कर्म पर असर हुआ या नहीं? शोभालालजी! निमित्तपना बतलाना है और कर्ता है नहीं—दो बातें सिद्ध करना है। कर्ता नहीं। कर्ता अर्थात् यह परिणमानेवाला नहीं। परिणमता है तो स्वयं परन्तु यहाँ निमित्त है एक, इतनी बात है; दूसरा कुछ है नहीं। राग-द्वेष हुए, इसलिए होना पड़ा-ऐसा नहीं है। राग-द्वेष हुए, इसलिए होना पड़ा-ऐसा नहीं है; उस समय परमाणु में कर्म-अवस्था होने की योग्यता से होती है। समझ में आया?

भारी सब प्रश्न किये हैं। (संवत्) २००६ के साल, मूलशंकर भाई ने किया (था), देखो! राग-द्वेष न करे तो वहाँ होता? राग-द्वेष करे तो होता है। भगवान! क्या करता है यह? उस समय के उत्पाद का उसका स्वकाल नहीं? स्वकाल की अपनी अस्ति से स्वकाल में परिणमा है। पर के काल की अस्ति से तो नास्ति है। राग-द्वेष के परिणाम, वे जीव के स्वकाल के परिणाम और पुद्गल में कर्म-अवस्था होना, वह पुद्गल की स्वकाल की अवस्था। इस स्वकाल की अवस्था से अस्ति है और परकाल की अवस्था से नास्ति है। समझ में आया? यह १२ गाथा (पूर्ण) हुई।

गाथा - १३

प्रश्न : इस जीव के जो विभावभाव होते हैं, वे स्वयं से ही होते हैं या उनका भी कोई निमित्तकारण है? इसका उत्तर आगे कहते हैं।

परिणममानस्य चितश्चिदात्मकैः स्वयमपि स्वकैर्भावैः।
भवति हि निमित्तमात्रं पौद्गलिकं कर्म तस्यापि।।१३।।

स्वयं किये चिन्मय भावों में परिणमते इस चेतन को।
निमित्त मात्र होते हैं पुद्गल परमाणुमय कर्म अहो।।१३।।

अन्वयार्थ : (हि) निश्चय से (स्वकैः) अपने (चिदात्मकैः) चेतनास्वरूप (भावैः) रागादि परिणामों से (स्वयमपि) स्वयं ही (परिणममानस्य) परिणमन करते हुए (तस्य चित अपि) पूर्वोक्त आत्मा के भी (पौद्गलिकं) पुद्गल सम्बन्धी (कर्म) ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म (निमित्तमात्रं) निमित्तमात्रं (भवति) होता है।

टीका : 'हि चिदात्मकैः स्वकैर्भावैः परिणममानस्य तस्य चितः अपि पौद्गलिकं कर्म निमित्तमात्रं भवति' – निश्चय से चैतन्यस्वरूप अपने रागादि परिणामरूप से परिणमन किये हुए उस पूर्वोक्त आत्मा के भी पौद्गलिक ज्ञानावरणादि कर्म निमित्तमात्र होते हैं।

भावार्थ : इस जीव के रागादि विभावभाव अपने आप ही (स्वद्रव्य के आलम्बन से) नहीं होता। यदि आप ही से हो तो वह भी ज्ञान-दर्शन की तरह स्वभावभाव हो जाय और स्वभावभाव होने पर उसका भी कभी नाश नहीं हो सकता। इसलिए ये भाव औपाधिक हैं, अन्य निमित्त से होते हैं और वे निमित्त ज्ञानावरणादि कर्मों को जानना। जिस-जिस प्रकार द्रव्यकर्म उदयावस्था को प्राप्त होता है उसी-उसी प्रकार आत्मा विभावभावरूप परिणमन करता है।

प्रश्न : पुद्गल में ऐसी कौनसी शक्ति है कि जो चैतन्य को विभावभावरूप परिणमन करवा देती है?

www.vitragvani.com

उत्तर : जिस प्रकार किसी मनुष्य के सिर पर मन्त्र पढ़ी हुई धूल डाली हो तो उस धूल के निमित्त से वह पुरुष स्वयं को भूलकर नाना प्रकार की विपरीत चेष्टायें करता है। मन्त्र के निमित्त से उस धूल में ऐसी शक्ति हो जाती है कि वह बुद्धिमान पुरुष को विपरीत *परिणमन करवा देती है। उसी प्रकार इस आत्मा के प्रदेशों में रागादि के निमित्त से बँधे हुए पुद्गलों के निमित्त से यह आत्मा स्वयं को भूलकर नाना प्रकार के विपरीत भावरूप परिणमन करता है। इसके विभावभावों के निमित्त से पुद्गल में ऐसी शक्ति हो जाती है कि वह चैतन्य पुरुष को विपरीत परिणमन करवा देता है। इस भाँति भावकर्म से द्रव्यकर्म और द्रव्यकर्म से भावकर्म होता है, इसे ही संसार कहते हैं।।१३।।

गाथा १३ पर प्रवचन

इस जीव के जो विभावभाव होते हैं, वे स्वयं से ही होते हैं या उनका भी कोई निमित्तकारण है? इसका उत्तर आगे कहते हैं। अपने से अवश्य होता है, परन्तु निमित्त है या नहीं? —यह बात सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : दोनों मिलकर करते हैं।

उत्तर : नहीं, नहीं; देखो! कहेंगे, विशिष्टता देखो तो सही! '**परिणममानस्य**' शब्द यहाँ से शुरु किया है। '**परिणममानस्य**' देखो! गजब श्लोको!

परिणममानस्य चितश्चिदात्मकैः स्वयमपि स्वकैर्भावैः।
भवति हि निमित्तमात्रं पौद्गलिकं कर्म तस्यापि।।१३।।

अन्वयार्थ : 'हि' निश्चय से अपने चेतनास्वरूप.... अन्वयार्थ। देखो विशिष्टता! **निश्चय से अपने....** अर्थात् आत्मा के। कैसे? **चेतनास्वरूप रागादि परिणामों....** देखो! दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, मिथ्यात्वभाव—ये सब चेतनस्वरूप विकारीभाव

* प्रत्येक द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से है, परद्रव्यादि का उसमें सदा अभाव ही है, इसलिए कोई किसी को परिणमन नहीं करवा सकता, तो भी जीव के उस प्रकार के परिणमन करने की योग्यता के काल में बाह्य में किस सामग्री को निमित्त बनाने में आया था, उसका ज्ञान करवाने के लिए असद्भूत व्यवहारनय से निमित्त को कर्ता कहा जाता है। व्यवहार कथन की रीति ऐसी ही है, इस प्रकार जानना चाहिए।

www.vitragvani.com

हैं। समझ में आया? ये अचेतनस्वरूप जड़ के भाव नहीं हैं। एक ओर इन्हें जड़ कहें, चेतनस्वरूप नहीं। चेतनस्वरूप से भिन्न, वह निश्चयस्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से पुण्य-पाप के भाव, वे अचेतन और पुद्गलपरिणाम हैं। यहाँ तो कर्म से भिन्न, अपनी अवस्था में होते हैं; इसलिए ये चेतनास्वरूप राग-द्वेष, पुण्य-पाप, मिथ्यात्व के भाव, वे **स्वयं ही परिणमन करते हुए....** देखो! **परिणममानस्य** पर वजन है। वास्तव में **अपने चेतनास्वरूप रागादि परिणामों....** जीव स्वयं ही (रागादिरूप परिणमित होता है)। यहाँ चेतनास्वरूप कहेंगे। (गाथा) १४ वीं में निकाल डालेंगे, कर्मकृत कहकर निकाल डालना चाहेंगे। परन्तु होते हैं वे चेतनास्वरूप में, चेतना करे तो होते हैं। समझ में आया? अपने चेतनास्वरूप राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव, **स्वयं ही परिणमन करते हुए.... परिणामों से स्वयं ही परिणमन करते हुए पूर्वोक्त आत्मा के भी....** स्वयं ही परिणमता हुआ, कौन? आत्मा। पूर्वोक्त आत्मा को भी **परिणामों से स्वयं ही परिणमन करते हुए पूर्वोक्त आत्मा के भी....** यहाँ वजन है। विकाररूप से स्वयं ही परिणमते ऐसे आत्मा को भी। अब परिणमता तो यहाँ सिद्ध कर दिया। समझ में आया?

पुद्गल सम्बन्धी ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म निमित्तमात्रं होता है। लो! यहाँ कहा। जीव अपने चैतन्यस्वरूप पुण्य-पाप के, मिथ्यात्व आदि के भाव से स्वयं ही परिणमते, परिणमित हुआ है; परिणमता है, परिणमना है। इस प्रकार परिणमते ऐसे **पूर्वोक्त आत्मा के भी....** परिणमित-विकाररूप से परिणमित आत्मा को भी, **पुद्गल सम्बन्धी....** देखो! अब जड़कर्म (लेते हैं)। **ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म निमित्तमात्रं होता है।** लो! भाषा देखो! जीव अपनी ज्ञान की हीनता, दर्शन की हीनता, चारित्र की विपरीतता, श्रद्धा की विपरीतता या राग-द्वेष के भाव—ऐसे परिणमते आत्मा को, परिणमते आत्मा को, होते आत्मा को, उसरूप हुए आत्मा को, होते हुए आत्मा को पूर्व का द्रव्यकर्म उसे निमित्त कहलाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : .....निमित्त सही।

उत्तर : नहीं, ऐसा कहाँ कहा? आत्मा को भी—ऐसा कहते हैं। परिणमते ऐसे आत्मा को यह कर्म एक निमित्त होता है-इतना। परिणमते ऐसे आत्मा को यह निमित्त पूर्व

www.vitragvani.com

का होता है। परन्तु आया सही न! '**तस्य चितः अपि**' ऐसा। उस आत्मा को भी। निमित्त है कौन? पूर्व के कर्म का उदय। परिणमते आत्मा को भी चेतनास्वरूप राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकार होते हुए, होते हुए, होते हुए आत्मा को पुद्गल सम्बन्धी ज्ञानावरणादि आठ कर्म का उदय, वह निमित्तमात्र होता है। लो! समझ में आया?

पुद्गलकर्म है, इसलिए यहाँ परिणमता है—ऐसा नहीं और यहाँ परिणमता है; इसलिए पुद्गलकर्म को होना पड़ता है- ऐसा नहीं। यहाँ जीव स्वयं परिणमता है, तब पुद्गलकर्म निमित्त कहलाता है और जीव स्वयं राग-द्वेषरूप परिणमा, तब नये कर्म स्वयं के स्वकाल में कर्म-अवस्था धारण करते हैं, वह स्वयं से **परिणममानस्य** स्वयं से **परिणममानस्य** उसे राग-द्वेष के भाव निमित्त हैं। पुद्गलकर्मरूप से **परिणममानस्य** उसे जीव के राग-द्वेष के परिणाम निमित्त हैं और जीव राग-द्वेषरूप परिणमते आत्मा को पुद्गलकर्म की पर्याय निमित्त है। यह बात सिद्ध करनी है।

मुमुक्षु : परिणमे, तब तो निमित्त कहलाये।

उत्तर : बस! बात यह है। है, परन्तु निमित्त है। यह भी परिणमता है और यह निमित्त है। यहाँ से जीव में क्यों लिया है? क्योंकि परिणमता है तो वहाँ से भी, परन्तु परिणमता है, वह यहाँ से लेकर राग-द्वेष परिणमता है, (तब) पुद्गल उसके कारण उस समय परिणमता है। राग-द्वेष स्वयं परिणमता है। दोनों बातें यहाँ से ली हैं। राग-द्वेषरूप परिणमता है, तब कर्म अपने आप परिणमते हैं। राग-द्वेषरूप परिणमित होनेवाले जीव को पूर्व के कर्म निमित्त होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यह कर्ता के बिना, कर्म के कर्ता के बिना जीव अपने विकारीरूप परिणमता है, और जीव के विकारी परिणाम के कार्य को करता हुआ, यह राग-द्वेष पर के किये बिना पुद्गल के परिणाम कर्मरूप होते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? सब-सबकी स्वतन्त्रता बताते हैं। कर्ता है, वह स्वतन्त्र है—ऐसा कहते हैं। पुद्गल कर्मरूपी अवस्था धारण करता है, वह कर्ता होकर स्वतन्त्र है; जीव, राग-द्वेषरूप परिणमें, वह कर्ता होने को स्वतन्त्र है। कर्ता हो, वह स्वतन्त्र होता है। समझ में आया?

टीका : 'हि चिदात्मकैः स्वकैर्भावैः परिणममानस्य तस्य चितः अपि

www.vitragvani.com

पौद्गलिकं कर्म निमित्तमात्रं भवति' – निश्चय से.... वास्तव में **चैतन्यस्वरूप अपने रागादि परिणामरूप से परिणमन किये हुए....** यहाँ वजन है। वास्तव में चैतन्यस्वरूप ऐसा आत्मा अथवा उसके स्वयं के रागादि परिणाम, चैतन्यस्वरूप रागादि परिणाम। पुण्य-पाप, काम-क्रोध, दया, दान, व्रत आदि **परिणमन किये हुए उस पूर्वोक्त आत्मा के, परिणमन किये हुए उस पूर्वोक्त आत्मा के भी...** निमित्त सिद्ध करना है। **पौद्गलिक ज्ञानावरणादि कर्म निमित्तमात्र होते हैं।** उसे पुराना कर्म निमित्तमात्र होता है और नये (कर्म) परिणमित होने को राग-द्वेष परिणाम निमित्तमात्र होते हैं। यह बात सिद्ध करते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

भावार्थ : इस जीव के रागादि विभावभाव अपने आप ही (स्वद्रव्य के आलम्बन से) नहीं होता। अब जरा ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? स्वभाव के आश्रय से कोई विकार नहीं होता। राग-द्वेष का भाव, पुण्य-पाप का भाव, वह कहीं स्वभाव के आश्रय से नहीं होता, क्योंकि स्वभाव में कहाँ है? वह पर के अवलम्बन के लक्ष्य से होता है। राग-द्वेष हों, वे आत्मा के आश्रय से-स्वभाव के आश्रय से नहीं होते। किये हुए इसके, हुए इसमें, परिणमित इसमें; परन्तु वे राग-द्वेष, स्वभाव के आश्रय से नहीं होते—ऐसा अब सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

अपने आप ही नहीं होता। आप से ही होते नहीं, इसकी व्याख्या क्या? पहले में तो अपने से होते हैं—ऐसा कहा था, अपना चैतन्य स्वभाव-अपने से होते हैं, परन्तु यहाँ, अपने से नहीं होते—अर्थात् क्या? वहाँ कहा—अपने से होते हैं, वह स्वपर्याय में होते हैं। यहाँ अपने से नहीं होते अर्थात् स्व-स्वभाव के आश्रय से नहीं होते। इस प्रकार अपने से नहीं होते—इसके दो भाग / अर्थ। पहले में कहा कि राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव स्वयं से होते हैं अर्थात् पर्याय में स्व से होते हैं—यह सिद्ध किया।

अब ये पुण्य-पाप के भाव स्वयं से अर्थात् द्रव्यस्वभाव शुद्ध चैतन्य है, उसके आश्रय से नहीं होते। होते हैं अपने से, अपने में, परन्तु अपने स्वभाव के आश्रय से नहीं होते; निमित्त के अवलम्बन से होते हैं। पर का लक्ष्य करता है, अवलम्बन करता है; तब विकार होता है। स्व के लक्ष्य से कहीं विकार नहीं होता। (यदि) स्व के लक्ष्य से विकार

www.vitragvani.com

होवे तो कभी विकार का नाश न हो। स्व के लक्ष्य से तो स्वभाव होता है। शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, वह तो आनन्दमूर्ति है। उसके लक्ष्य से, उसके आश्रय से विकार कैसे हो? उसके आश्रय से तो स्वभाव होता है। समझ में आया? कठिन कितना अटपटा। अपने आप से होता है, फिर कहते हैं कि अपने से नहीं होता। अपने से होता है अर्थात् अपनी पर्याय अपने से हुई है। परन्तु वह पर्याय अपने से नहीं होती अर्थात् द्रव्यस्वभाव के लक्ष्य से नहीं होती—ऐसा इसका अर्थ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो अपने बैठाये तब हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बैठाये नहीं; ऐसा है। बैठा दिया क्या हो?

दो प्रकार हुए। आत्मा अपनी पर्याय में राग-द्वेष चेतनास्वरूप विकार आप स्वयमेव करे तो होता है। यह स्वतन्त्र क्रिया से बात की। अब, दूसरी बात—उस विकार का होना अपने द्रव्यस्वभाव, शुद्धस्वभाव के आश्रय से नहीं, परन्तु पर के आश्रय से है। होता है अपने में, स्वयं करनेवाला, परन्तु उसे पर-अवलम्बन से होते हैं; स्व-अवलम्बन से नहीं होते। ऐसी बात सिद्ध की है। लो! समझ में आया?

यदि आप ही से हो तो वह भी ज्ञान-दर्शन की तरह स्वभावभाव हो जाय... राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव यदि अन्तरस्वभाव के आश्रय से हों, तब तो स्वभाव हो गया। जैसे ज्ञान, दर्शन, शान्ति, आनन्द यह स्वभाव है; वैसे पुण्य-पाप के भाव, स्वभाव हो जाएँ। अपने स्वभाव में से हों और स्वभाव के आश्रय से हों, तब तो स्वभाव हो गया। **ज्ञान-दर्शन की तरह स्वभावभाव हो जाय और स्वभावभाव होने पर उसका कभी नाश भी नहीं हो सकता।** यह बात करनी है। विकारी भाव अपने स्वभाव के आश्रय से होवे तो स्वभावपने का नाश कभी नहीं होता और इनका तो नाश करना है। राग-द्वेष तो नाश करनेयोग्य है। उत्पन्न होनेयोग्य पर्याय में स्वयं के कारण है, परन्तु नाश करनेयोग्य है। वे स्वभाव के आश्रय से हों तो स्वभाव का नाश कभी होता नहीं। समझ में आया? न्याय से बात की है, देखो! **स्वभावभाव होने पर उसका कभी नाश भी नहीं हो सकता।**

तीन बातें की—एक तो आत्मा अपने से, अपनी पर्याय में मिथ्यात्वरूप या राग-

www.vitragvani.com

द्वेषरूप आप अपने से परिणमता है। एक बात। तब पुराने कर्म को निमित्त कहा जाता है, इतनी बात। बस! अब वह विकारी परिणाम जो है, वह यदि वस्तु द्रव्यस्वभाव के आश्रय से होवे तब तो वह स्वभाव हो गया और स्वभाव का नाश कभी होता नहीं; और इस विकार का तो नाश होता है। पुण्य-पाप अपने से हुए-यह ठीक, परन्तु उनका नाश होता है; इसलिए स्वभाव से हुए नहीं हैं। निमित्त के आश्रय से उपाधि हुई; स्वभाव के आश्रय से उसका नाश हो सकता है। बनियों को-व्यापारी को यह सब न्याय पकड़ना। ऐ... मोहनभाई! पकड़ना चाहिए? यह तो साधारण न्याय है।

ऐसा कहा—भाई! जो आत्मा है न? वस्तु स्वयं वस्तु, वह तो—द्रव्य तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द है। अब उसकी पर्याय में विकार होता है। यदि विकार न हो तो दुःख न हो, (तब) तो संसार न हो। तब यह संसार हुआ कहाँ से? कि स्वयं ने खड़ा किया पर्याय में; पर्याय में अपने से विकार—राग-द्वेषरूप परिणमित हुआ, इसलिए हुआ। अब तीसरी बात करते हैं कि तब विकार परिणाम हुए, वे किसके अवलम्बन से हुए? आत्मा के अवलम्बन से होते हैं? आत्मा तो शुद्ध चैतन्य द्रव्य है। वस्तु / द्रव्य है, उसके अवलम्बन से हो, तब तो स्वभाव हो और स्वभाव का तो कभी नाश होता नहीं; तो इन राग-द्वेष का होना अपने में होने पर भी, पर के अवलम्बन से होते हैं कि जिससे वह उपाधिभाव; स्व के अवलम्बन से नाश किया जा सकता है। समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं? रतिभाई!

इसलिए ये भाव औपाधिक हैं,.... लो! ऐसा सिद्ध करना है। ये पुण्य-पाप के भाव, वह उपाधिभाव हैं; स्वभावभाव बिल्कुल नहीं। स्वभावभाव नहीं, इसलिए नाश हो सकता है। स्वभावभाव होवे तो नाश नहीं हो सकता। समझ में आया? यह लेकर वह चौदहवीं गाथा में लेना है अब। **अन्य निमित्त से होते हैं....** अन्य निमित्त अर्थात् अन्य के संग से होते हैं। स्वस्वभाव के संग से विकारभाव नहीं होता, इसलिए अन्य के संग से होता है। निमित्त अर्थात् अन्य के संग से होता है।

वे निमित्त ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों को जानना। लो! यह निमित्त अर्थात् संग। किसका? कि ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म जड़। जड़ के संग से होते हैं। उसके संग से होते हैं;

www.vitragvani.com

इसलिए उससे होते है—ऐसा कहा गया है। पाठ तो (ऐसा है), अन्य निमित्त से होते हैं। ऐसा तो कहा, यह तो पहले सिद्ध किया। अपने चैतन्यस्वरूप में आप ही परिणमता है। समझ में आया? तब कर्म को निमित्त कहा जाता है। '**परिणममानस्य निमित्तमात्रं**' परन्तु यह परिणमन अपने स्वभाव के संग से नहीं होता; निमित्त के संग से होता है, वह निमित्त से होता है—ऐसा कहा गया है। कहो, समझ में आया? वह निमित्त तो ज्ञानावरणादि कर्म जानना। अब जरा पढ़ो, अब आया।

जिस-जिस प्रकार द्रव्यकर्म उदयावस्था को प्राप्त होता है, उसी-उसी प्रकार आत्मा विभावभावरूप परिणमन करता है। अर्थात? कि जिस-जिस प्रकार का ज्ञानावरणी का उदय होवे तो उस प्रकार से यहाँ आत्मा अपनी ज्ञान की हीनता को अपने कारण परिणमता है। दर्शनावरणी का उदय होवे तो दर्शनावरणी (दर्शन) स्वयं हीनरूप परिणमता है। दर्शनमोह का उदय होवे तो अपने कारण से मिथ्यात्वरूप परिणमता है। चारित्र (मोहनीय) का उदय होवे तो रागरूप परिणमता है, ऐसा। **जिस-जिस प्रकार द्रव्यकर्म....** द्रव्यकर्म के आठ प्रकारों में जो-जो कर्म, जिस प्रकार से **उदयावस्था....** होता है, **उसी-उसी प्रकार....** उस-उस प्रकार के निमित्त में जीव अपने विभावरूप से परिणमता है। कहो, समझ में आया इसमें?

द्रव्यकर्म की जैसी उदय-अवस्था है, उतने ही प्रमाण में परिणमता है—ऐसा नहीं, परन्तु यहाँ ज्ञान की हीन अवस्था होवे तो ज्ञानावरणीय का उदय होवे, उस उदय के निमित्त के आधीन होकर यहाँ परिणमता है। दर्शनावरणीय का उदय होवे तो उसके आधीन होकर परिणमता है, उसके वश होकर (परिणमता) है। **जिस-जिस प्रकार....** विवाद ही यह कर्म का पहले से उठा है। निमित्तप्रधानता घुस गयी, फिर सर्वत्र निमित्त घुस गया।

यहाँ तो कहते हैं कि स्वयमेव '**परिणममानस्य**' द्रव्यकर्म निमित्त है, उसका यह स्पष्टीकरण चलता है। स्वयमेव जीव, विकाररूप होते को ज्ञानावरणी आदि कर्म निमित्तरूप कहे जाते हैं। अर्थात् कि जिस-जिस प्रकार से आत्मा, विकाररूप परिणमता है, उस-उस प्रकार से सामने उस प्रकार के उदय का निमित्तपना होता है। ऐसा। समझ में आया? **जिस-जिस प्रकार द्रव्यकर्म उदयावस्था रूप से परिणमित होता है....** वह-वह

www.vitragvani.com

कर्म जिस प्रकार का, **उसी–उसी प्रकार आत्मा विभावभावरूप परिणमन करता है।** सामने ज्ञानावरणीय का उदय होवे तो यहाँ अपने उपादान में ज्ञान के हीनरूप परिणमने का उपादान स्वयं '**परिणममानस्य**'—स्वयं परिणमता है, तब ज्ञानावरणी का उदय निमित्त कहलाता है। ऐसे दर्शन अवस्था में, दर्शन अवस्था की हीनतारूप '**परिणममानस्य**' हीनरूप '**परिणममानस्य**' उसे दर्शनमोह का उदय निमित्त है। इसलिए जिस–जिस प्रकार का कर्म है, उस–उस प्रकार की हीनता की अवस्थारूप अपने कारण यहाँ परिणमे तब, उसको (कर्म को) निमित्त कहा जाता है। समझ में आया? यह उपादान–निमित्त का झगड़ा पहले नहीं था, कहते हैं। पुण्य का विवाद नहीं था–ऐसा लिखा है।

मुमुक्षु : .....

उत्तर : अवस्था को परिणमे। कहा नहीं? यही स्पष्टीकरण किया। परिणमे। ज्ञानावरणीय का उदय जिस प्रकार है, उस प्रकार से आत्मा अपनी अवस्थारूप परिणमे। उसके उदय से कहीं दर्शन हीनरूप परिणमे? ज्ञानावरणी के उदय प्रकार में कहीं दर्शनरूप हीनपने परिणमे? ज्ञानावरणीय के उदय में ज्ञान हीनपने परिणमे है। जिस प्रकार का सामने आठ में उदय है, उस प्रकार से यहाँ अपने हीनरूप अपने कारण परिणमता है।

मुमुक्षु : जिस प्रकार का निमित्त वहाँ आया, उस प्रकार से परिणमे।

उत्तर : निमित्त वहाँ आया न! जहाँ दर्शनमोह का उदय होवे तो यहाँ कोई ज्ञान के हीनरूप परिणमे—ऐसा होता है? दर्शनमोह का उदय होवे तो यहाँ मिथ्यात्वरूप परिणमे, वह अपने स्वभाव के कारण ऐसा विपरीत करके परिणमे। आठों कर्म में आठ भेद हैं न?

उत्पाद का अपना जो स्वकाल का रागादि है, तब उसके सामने उदय का उत्पाद का वह काल; उस प्रकार के कर्म का निमित्त है, बस! उस प्रकार का। आयुष्य का उदय न होवे तो आत्मा अपनी स्थिति वहाँ रहने की योग्यतारूप परिणमता है। आयुष्य की स्थिति से उसके राग–द्वेष का उत्पन्न (होना) होवे—ऐसा है नहीं। निमित्त में ऐसा नहीं है। निमित्त तो निमित्त है, परन्तु यहाँ आयुष्य का उदय हो, और राग–द्वेष हो–ऐसा है? चारित्रमोह का उदय हो और यहाँ राग–द्वेष अपने कारण होते हैं। ऐसा इतना इन्हें सम्बन्ध है। इसके साथ सम्बन्ध है।

www.vitragvani.com

प्रश्न : पुद्गल में ऐसी कौनसी शक्ति है कि जो चैतन्य को विभावभावरूप परिणमन करवा देती है? देखो! भाषा ऐसी ली है। गोम्मटसार में है। स्वयं परिणमता है, तब दूसरे परिणमाते हैं—ऐसा कहा जाता है। यह सब विवाद है। कर्म का और जीव का जगत को विवाद है। कर्म परिणमावे... कर्म परिणमावे... (ऐसा लोग कहते हैं), परन्तु तू निर्बल है (कि) वह तुझे परिणमावे? तेरे माल वाला है; विकाररूप परिणमना भी तेरा माल है, विपरीत है, विपरीतरूप होवे तो उसे (कर्म को) निमित्त कहा जाता है। तू विपरीत न होवे तो कर्म तुझे परिणमायेगा?

यह तो समयसार में आ गया है कि भाई! जीव, विकाररूप परिणमता है, उस परिणमते हुए को दूसरा परिणमाता है या नहीं परिणमते हुए को दूसरा परिणमाता है? समझे? आत्मा, विकाररूप परिणमता है; उस परिणमते हुए को दूसरा परिणमाता है या नहीं होते (परिणमते) को परिणमाता है? या नहीं होते को परिणमाता है? नहीं होते (परिणमते) को परिणमावे, ऐसी एक द्रव्य की पर्याय दूसरे की शक्ति दे नहीं सकती। या होते को परिणमावे? तो स्वयं अपने से परिणमे तो उसे पर की अपेक्षा नहीं है। समझ में आया?

पर परिणमाता है—ऐसा यदि कहें तो इसके दो प्रश्न उठे कि भाई! आत्मा उस समय विकाररूप परिणमता है उसे दूसरा परिणमाता है या नहीं परिणमते को दूसरा परिणमाता है? तब कहे कि परिणमते को दूसरा परिणमाता है। (तो) परिणमते को दूसरे परिणमानेवाले की आवश्यकता रहती नहीं; और नहीं परिणमते को दूसरा उसे परिणमने की शक्ति दे—ऐसा बन नहीं सकता। कहो, ठीक है?

मुमुक्षु : ....

उत्तर : परन्तु यह सर्वत्र लागू करना या नहीं? गाथा चलती हो, तब ठीक लगे—ऐसा कहते हैं। दूसरी गाथा चलती हो तब नहीं! इसे सर्वत्र लागू करना या नहीं?

पुद्गल में ऐसी कौनसी शक्ति है कि जो चैतन्य को विभावभावरूप परिणमन करवा देती है? स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा का डालते हैं न? देखो! ज्ञानावरणीय भी आत्मा के केवलज्ञान को नहीं परिणमने दे। अरे...! भाई! कर्म की शक्ति ऐसी है कि आत्मा, केवलज्ञानरूप नहीं परिणमता, उसे वह नहीं परिणमाता? या नहीं परिणमता, उसे वह

www.vitragvani.com

परिणमाता है ? या केवलज्ञान के हीनरूप पर्याय परिणमति है, उसे वह परिणमाता है ? हीनरूप परिणमित है, उसे पर की आवश्यकता नहीं और हीनपने नहीं परिणमता, उसे भी पर की आवश्यकता नहीं। अपना परिणमन स्वतन्त्र है। इसी तरह इस बात में भी, परिणमाता है—इसका विशेष स्पष्टीकरण अब करेंगे। समझ में आया ? इसे वास्तव में परिणमाता नहीं, परन्तु निमित्तरूप से कहा जाता है। यह स्पष्टीकरण करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)